डॉ. मीरा कुमारी
संस्कृत विभाग, सी. एम. जे. कॉलेज, खुटौना
ललित नारायण मिथिला विश्विद्यालय, दरभंगा, बिहार
ईमेल आइडी - kmeera573@gmail.com
मोबाइल नंबर- 6287538352

वर्ग- बीए पार्ट 2 **दिनांक -** 2-07-2020

विषय- संस्कृत (अभिज्ञानशाकुंतलम्)

चतुर्थ अंक का वैशिष्ट्य

उत्तर- काव्य में नाटक, नाटकों में शाकुंतल और उसमें भी उसका चतुर्थ अंक रमणीयता के लिए अत्यंत प्रसिद्ध है। इस अंक में कण्व अपने शिष्यों के साथ आपन्नसत्वा शकुंतला को दुष्यंत के पास भेजते हुए कहते हैं-

"यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठ:स्तम्भितवाष्पवृत्ति कलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकस:
पीडयन्ते गृहिण: कथं नु तनयाविश्लेषदु:खैर्नवै:"।।

अर्थात् शकुंतला चली जाएगी, इस कारण मेरा हृदय दुख से भर रहा है। अश्रुधाराओं के बहने को रोकने के कारण मेरा गला भर आया है। मेरी दृष्टि चिंता के कारण निश्चेष्ट हो गई है। वन में निवास करने वाले मुझको जब (शकुंतला के प्रति) प्रेम के कारण ऐसी विकलता है, तब प्रथम बार पुत्री के वियोग से उत्पन्न दुखों से गृहस्थ पुरुष कितने अधिक दु:खित होते होंगे।

शकुंतला की विदाई का यह दृश्य अत्यंत कार्मिक तथा हृदयग्राही है और इसी कारण यह अंक पूरे नाटक की जान है। शकुंतला को विदा करते समय पिता कण्व और शकुंतला की सखियां ही नहीं, अपितु आश्रम के पेड़-पौधे तथा आदि भी वियोग-व्यथा से व्याकुल होकर रो पड़ते हैं। यहां जड़ और चेतन समान रूप से शोक से विह्वल दिखाई पड़ते हैं। मालूम होता है जैसे कण्व की चिंता समस्त वातावरण पर छा गई हो। शकुंतला की विदाई के समय हरिणियां मुंह में चबाते हुए कुश के कौर उगल देती है, भौरों ने नाचना छोड़ दिया है, लताएं पीले- पीले पत्तों को इस प्रकार गिराती है मानो वे उस बहाने आंसू गिरा रही हो। यथा-

"उद्गीर्णदर्भकवला मृग्य: परित्यक्तनर्त्तना मयूर्य:।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुग्धन्ति अश्रु इव लता:"।।

शकुंतला के प्रस्थान के समय ऐसा लगता है जैसे तपोवन की साड़ी सुषमा ही विदा हो रही है एक विज्ञ आलोचक के शब्दों में - "ऐसे अवसर पर हृदय को दृढ़ एवं कठोर बना कर कुलपति कण्व ने जो उपदेश एवं संदेश दिया है,वह एक ओर संवेदना और कातरता से भरा है, किंतु दूसरी ओर अनुभव और विवेक का परिचायक है।" शकुंतला को विदा करते समय अपने दामाद राजा दुष्यंत के पास संदेश भेजते हुए कहते हैं-

"अस्मान् साधु विचिन्त्य संयम
धनानुच्चै: कुलं चात्मन:
स्त्वय्यस्या: कथमप्यबान्धवकृतां
स्नेह प्रवृत्तिं च ताम्।
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु
दृश्या त्वया
भाग्यायत्तमत: परं न खलु तद्
वाच्यं वधूबन्धुभि:"।।

अर्थात् संयमरूपी धनवाले हमलोगों का, अपने उच्च कुल का और किसी भी प्रकार बंधुओं द्वारा न किए गए हुए तेरे प्रति इस (शकुंतला) स्वाभाविक प्रेम- व्यापार का उचित रूप में विचार कर तुम अपनी स्त्रियों में इसको सब के समान ही गौरव के साथ देखना। इसके आगे भाग्य के अधीन है। वह (हम) वधू के संबंधियों को नहीं कहना चाहिए। पुनः शकुंतला को उपदेश देते हुए तपस्वी कण्व कहते हैं-

"शुश्रूषस्व गुरून् कुरू प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गम:।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामा: कुलस्याधय:"।।

अर्थात् अपने गुरुजनों (माननीय सास-ससुर आदि) की सेवा करना, अपनी सपत्नियों के साथ प्रिय सखी जैसा व्यवहार करना। अपमानित होने पर भी क्रोध के कारण आवेश में आकर पति के प्रतिकूल कार्य मत करना। अपने आश्रितों (सेवकों आदि) पर अत्यंत उदार रहना और अपने सौभाग्य पर गर्व ना करना। इस प्रकार का आचरण करने से स्त्रियां गृहलक्ष्मी के पद को प्राप्त कर लिया करती है और इसके विरुद्ध आचरण करने वाली स्त्रियां अपने घरवालों के हृदय में दु:ख उत्पन्न करने वाली होती है अथवा अपने कुल के लिए अभिशाप होती है।

शकुंतला की विदाई के समय शोकस्तब्ध तपोवन की तरु- लताओं की कातरता से संतप्त होकर कण्व उन्हें संबोधित करते हुए कहते हैं-

पातुं न प्रथम व्यवस्यति जलंयुष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये व: कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सव:
सेयं याति शकुंतला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।

अर्थात् तुमको बिना जल पिलाए जो (शकुंतला तुमसे) पहले जल पी लेने का विचार नहीं किया करती थी, तुम्हारे प्रति प्रेमाधिक्य के कारण जो अलंकरण- प्रिय होने पर भी तुम्हारे नवीन पत्तों को नहीं तोड़ा करती थी, तुम्हारे प्रथम बार पुष्पों के निकलते समय जिसका उत्सव होता था, वह यह शकुंतला (आज) पति के घर जा रही है। आप सब (अपनी -अपनी) अनुमति दीजिए।

विचार करने पर मालूम पड़ता है कि कदाचित् संस्कृत साहित्य में इससे अधिक प्रभावोत्पादक तथा सहज दृश्य और कहीं है ही नहीं। यद्यपि कालिदास के रति- विलाप और अज-विलाप परम कारूणिक दृश्य उपस्थित करते हैं, तथापि वे सब इसके आगे फीके पड़ गए हैं। यहां पर मानव हृदय का प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करने में कालिदास ने अद्भुत चातुरी दिखलाई है। विश्वव्यापी वेदना का जो सुंदर चित्रण यहां प्रस्तुत किया गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

इस अंक में प्रेम और करुणा का अपूर्व सम्मिलन है। यह दृश्य इतना करुणोत्पादक है कि इसे स्मरण करते ही सहसा भवभूति प्रणीत उत्तररामचरित की उक्ति याद आ जाती है-

'अपिग्रावा रोदित्यपि च दलति वज्रस्य हृदयम्'

अर्थात् जिसे सुनकर पत्थर भी पिघल पड़े और वज्र सा हृदय भी फूट पड़े। एक विज्ञ आलोचक की दृष्टि में यह अंक मानो शब्द- निर्मित मानव हृदय ही है। इन्हीं सब कारणों से चौथे अंक की महिमा समीक्षकों और काव्य- मर्मज्ञों ने मुक्त कंठ से स्वीकार की है। वस्तुतः इस अंक की बराबरी करने वाला संपूर्ण नाटक साहित्य में एक भी स्थल नहीं है। फलत: "तत्रापि च चतुर्थोंक:" यह कथन सर्वथा सत्य प्रतीत होता है।